प्रवचन-३९, गाथा-४०, श्लोक-५६ शनिवार, चैत्र शुक्ला १२ दिनांक ०२-०४-१९६६

यह आत्मा, इसे कर्म जो संयोग है न ? कर्म जड़। वास्तव में वह कर्म का बन्धन और इसका भाव ही आत्मा में नहीं है अर्थात् यह आत्मा जो है, वह शुद्धभाव, पूर्णानन्द प्रभु आत्मा शुद्ध है। उसमें यह शरीर, वाणी, मन तो उसमें नहीं। वह तो मिट्टी पर है। इसी प्रकार कर्म जो है, कर्म जड़, वह भी जड़ कर्म है, वह आत्मा के स्वरूप में नहीं है। नहीं समझ में आता ? ऐई ! भाईलालभाई ! यह सब तुम्हारी ओर से सब तर्क करते हैं।

जिसे प्रथम सम्यग्दर्शन, जिसे प्रथम धर्म-सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, पहले में पहला धर्म। जो अनादि से दुःखी, कर्म मेरे और राग-द्वेष मेरे, परवस्तु मेरी और स्ववस्तु शुद्ध चैतन्य वह मेरी नहीं, ऐसी मान्यता से अनादि काल से यह दुःखी.. दुःखी.. दुःखी हो रहा है। समझ में आया ? वस्तु भगवान एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में.. शुद्ध (भाव) अधिकार चलता है। शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु शुद्ध है। उसे अपना न मानकर.. वह स्व है, उसे अपना न मानकर इस कर्मबन्धन, शरीर, वाणी, मन और कर्म के भेदों के सब प्रकार, वे मुझमें हैं, ऐसी मान्यता वह मिथ्यादृष्टि की दुःखदायक पापदृष्टि अनादि की है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म कहाँ है ? यहाँ तो भाव कहा। यह दृष्टि अनादि की विपरीत है। कर्म भी अनादि का क्रम-क्रम से उसके कारण चला आता है।

मुमुक्षु : दुःखी है अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुःखी अर्थात् आत्मा, आत्मा जो वस्तु है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ अनुभव नहीं, वहाँ उसे शरीर, वाणी, कर्म, पुण्य, पाप मेरे—ऐसी मान्यता है, वह मान्यता दुःखरूप और आकुलता है। अर्थात् उसे आत्मा के आनन्द का भान नहीं परन्तु यह दुःख है। दुःख संयोग की यहाँ व्याख्या नहीं। प्रतिकूल

संयोग, वह दु:ख और अनुकूल संयोग, वह सुख, यह वस्तुस्वरूप में है ही नहीं। वह तो परचीज़ है। पर में सुख-दु:ख का कारण है नहीं, परन्तु स्वयं सिद्ध समान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने जो आत्मा अन्तर (में) देखा, सबका, हों! वह आत्मा तो शुद्धचैतन्यघन अनाकुल आनन्दकन्द आत्मा है, उसे यहाँ शुद्धभावरूप से वर्णन किया जाता है। ऐसे शुद्धभाव की अन्तर्दृष्टि के अभाव के कारण वह अनादि काल से राग और द्वेष, पुण्य और पाप मेरे तथा कर्म मेरे, ऐसे परवस्तु को मेरेपने की मान्यता से मिथ्यापने के सेवन से अनादि से दु:खी, दु:खी और दु:खी है। पोपटभाई!

मुमुक्षु : नयी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि की है परन्तु इसे ख्याल में नहीं न! अरे! यह वह मैं कौन हूँ? जो आत्मा अर्थात् कि यहाँ शुद्धभाव। ज्ञान, चैतन्यज्योति पूर्णानन्द का नाथ, जिसकी एक अन्तर्दृष्टि करने से जिसे शान्ति और आनन्द आवे, ऐसा आत्मा है। ऐसे आत्मा की अनादि काल से अज्ञानी को (खबर नहीं)। त्यागी हुआ.. समझ में आया? साधु नाम धराया, पंच महाव्रत की क्रिया पाली, ऐसा माना परन्तु वह सब मिथ्यादृष्टि अनादि से दु:खी है। आहाहा! आत्मा.. देखो!

कहते हैं, **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है..** देखो, पहली लाईन। ४०वीं गाथा। **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है..** भगवान आत्मा तो निरुपराग अर्थात् मलिनता का विकार, वह स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! वह निरुपराग अर्थात् विकारभाव, मलिनता, दु:खरूप भाव, मिथ्यात्वभाव, यह शरीर मेरा और मैं शुद्धभाव वह (मैं) नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प हों, विकारभाव, शुभ-अशुभभाव, दया, दान, वृत्ति के भाव, पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, तप का विकल्प / राग उठता है, वह पुण्य राग विकार है। हिंसा झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना की वृत्ति उठती है, वह पाप है। ये दोनों विकार, वह मैं हूँ और विकाररहित निरुपराधि चीज़वाला मैं हूँ, यह भूल गया है; इसलिए इसकी दृष्टि में मिथ्यात्व का दु:ख वेदन में आता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दु:खी होवे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी क्या? दिखता नहीं? कहाँ है? आनन्द कहाँ है? लाओ। क्या दु:खी अर्थात् क्या? रोटियाँ नहीं मिले, इसलिए दु:खी? निर्धनता, (इसलिए)

दु:खी ? उसे कहता है कौन ? समझ में आया ? और स्वर्ग के इन्द्र हुए, इसलिए सुखी ? कौन कहता है ? भगवान इनकार करते हैं कि ऐसा है ही नहीं। समझ में आया ? सुख तो उसे कहते हैं-स्वाधीनता। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप शुद्ध आत्मा है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके आस्वाद-अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हो, उसे भगवान सुख कहते हैं। उस सम्यग्दृष्टि को सुख होता है, अज्ञानी को सुख नहीं होता। समझ में आया ?

सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है... भगवान आत्मा, वह तो सिद्धसमान अपना स्वरूप अन्दर है। उसकी इसे खबर नहीं। **ऐसे निरंजन (निर्दोष)...** भगवान आत्मा पवित्र का धाम निज परमात्मतत्त्व, वह अपना परमस्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द का तत्त्व आत्मा, उसे **वास्तव में द्रव्यकर्म के-जड़कर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के...** जिसे कर्म ही नहीं, फिर उसके स्थान स्थितिबन्ध कहाँ से आये ? अरे.. अरे.. ! गजब बात, भाई ! इस वर्तमान अवस्था के लक्ष्यवाले जीव को कर्म का सम्बन्ध है, वह व्यवहार है परन्तु वह सम्बन्ध स्वीकारना और सम्बन्धरहित त्रिकाल को न स्वीकारना, इसका नाम भगवान मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मिथ्यात्वी दु:खी कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...सम्बन्धरहित स्वभाव सम्बन्धवाला, आनन्द सम्बन्धवाला मैं..

मैं आत्मा अर्थात् आनन्द और ज्ञान की मूर्ति। चैतन्यसूर्य और सुख के सागर से भरपूर भगवान। सुख कौन सा ? इस धूल में सुख माने, वह तो मूढ़ जीव है। समझ में आया ? इस पुण्य में सुख, पैसे में सुख, स्त्री में सुख, माँस, हड्डियों के भोगने में सुख, वह तो मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि की मान्यता है। वह सुख नहीं, वह मान्यता दु:ख की है। आहाहा ! समझ में आया ?

सुख अर्थात् कि जो आत्मा में शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, उसे इस बन्धन के विकारी भाव जो वर्तमान समय के सम्बन्धरूप वर्तते हैं, उनकी रुचि, आश्रय, अवलम्बन छोड़कर, शुद्धभाव त्रिकाल ज्ञानानन्द आत्मा हूँ, उसका अन्तर आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी प्रगट हो, तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का आंशिक स्वाद आता है, उस जीव को धर्मी और सुखी कहा जाता है। समझ में आया ?

अनन्त काल से मूल बात ही इसने लक्ष्य में नहीं ली। ऐसे का ऐसा मूढ़रूप से मर

गया। चौरासी के अवतार में, नरक और निगोद, भिखारीरूप से देव और राजा, रंक, सब भिखारी। भगवान आत्मा बादशाह अनन्त गुण का पिण्ड है, उसकी दृष्टि और उसकी अधिकाई न मानकर, अपने स्वभाव की शुद्धता से पुण्य-पाप के राग को अधिकरूप से-विशेषरूप से, उसमें प्रसन्नतारूप से, उसे अधिकरूप से स्वीकार करता है, वह मिथ्यादृष्टि दु:खी और अज्ञानी है। वह चार गति के राह के भाव लेकर घूमता है। समझ में आया? आहाहा! वह चार गति में भटकने का कलेवा लेकर घूमता है। समझ में आया? राह खर्च। राह खर्च समझ में आया या नहीं? यह मार्ग में जाये, वहाँ हाथ में खर्ची-बर्ची रखते हैं या नहीं? कलेवा-बलेव रखते हैं या नहीं? मैसूर ले जाते हैं, गाठिया ले जाते हैं या ढेबरा ले जाते हैं। मार्ग में जाये कहीं वहाँ। इसी प्रकार यह आत्मा कहते हैं कि चार गति की राह में पड़ा हुआ अनन्त काल से नरक और निगोद और चार गति के पन्थ में पड़ा हुआ, अपना शुद्ध चैतन्यभाव, स्वभावभाव, पिण्डभाव की दृष्टि का अनादर करके, इतना वह मैं, ऐसा अनादर करके और पुण्य तथा पाप और उनके फल वे मेरे, वह मैं, ऐसी मिथ्यादृष्टि का भाव इसे चार गति के पन्थ का राह का खर्च लेकर घूमता है। पोपटभाई! आहाहा! गजब बात! परन्तु बात सुनी न हो, अब उसे यह क्या होगा? यह वीतराग भगवान कहते होंगे? वीतराग के वाड़ा में ऐसा सुनने को मिले नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल का केवलज्ञान था। वे केवलज्ञानी ऐसा फरमाते हैं कि भाई! तेरा भाव जो त्रिकाली नित्यानन्द अनाकुल कन्द है, उस स्वरूप तू है, वह तेरा जीव स्वरूप है। इसके अतिरिक्त जितने विकृतभाव उत्पन्न हों या उनके सम्बन्ध से कर्म हों या उनके सम्बन्ध से यह धूल आदि का संयोग मिले, वह सब चीज़ पर है। उस पर में मैं हूँ और मुझमें मैं नहीं - ऐसी मान्यता मिथ्यात्व की, अज्ञान की, चार गति के निगोद की राह की गति का भाव है। समझ में आया? और मोक्ष की राह का पन्थ भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द अनाकुल हूँ—ऐसी अन्तर में दृष्टि में शुद्धस्वभाव का अन्तर्मुख होकर उसका स्वीकार (करना कि) उतना मैं और रागादि मैं नहीं, ऐसी दृष्टि का अनुभव, वह आत्मा को मोक्ष के पन्थ में ले जाने का मार्ग है। समझ में आया? अरेरे! गजब बातें यह।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धर्म अर्थात् यह धर्म। दूसरा कौन-सा धर्म? धर्म करो.. धर्म करो.. कहाँ धूल में धर्म है? पैसे में, शरीर में? वह तो मिट्टी है, धूल है, वह तो पुद्गल मिट्टी-जड़ है। कहीं के रजकण कहीं से आकर यहाँ आये हैं। वापस आकर राख हो जायेंगे। वह कहाँ आत्मा था? समझ में आया? पैसा कहाँ आत्मा है? वह तो धूल है, अजीव पुद्गल है। उसके द्वारा आत्मा को धर्म होगा? ऐ..ई! धूल में भी नहीं होगा। मर गया.. मूढ़ होकर! समझ में आया? शरीर ही यह पिण्ड, माँस का पिण्ड, अरे! चैतन्य पवित्र को इस अपवित्र के पिण्ड के साथ रखना, कहते हैं कि मान्यता में तुझे कलंक है, प्रभु! समझ में आया?

यहाँ तो सदा निरुपाधि भगवान आत्मा को आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव हों, वह तो आस्रवतत्त्व है। शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वह पुण्यपरिणाम आस्रव है। वह आत्मा नहीं और उनसे बन्धन होता है, वह कर्म रजकण अजीवतत्त्व है और उससे बाहर का संयोग मिले, वह भी परतत्त्व है। उसमें आत्मा कहाँ आया? समझ में आया?

ऐसे निरंजन (निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं। जिसे कर्म ही नहीं, उसे फिर स्थिति कहाँ से आयी? आहाहा! समझ में आया? यह **ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार, वह प्रकृतिबन्ध है; उसके स्थान (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं हैं।** वे शुद्धभाव में नहीं हैं। उसने फिर स्व-आकार का अर्थ स्वीकार किया है। स्वीकार करके क्या किया है? है पाठ में स्व-आकार। उसने स्वीकार लिखा है। आत्मा.. भाई! यह आत्मा अर्थात् स्फटिक शुद्ध आनन्दकन्द का चैतन्यरत्न। आत्मा अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का और ज्ञान के प्रकाश के नूर के तेज का चैतन्य स्फटिक रत्न है। भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा के अतिरिक्त उसे कर्म के सम्बन्ध में कर्म की आकृति-कर्म के रजकण की प्रकृति पड़ती है, वह आत्मा में कहाँ है? वस्तु में होवे तो पृथक् नहीं पड़े। वस्तु में नहीं है। वह तो उसके घर में-उसके रजकण में रजकण है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य दल में उस कर्म का स्पर्श नहीं है। आहाहा! यह इसे गले उतरना (कठिन पड़ता है)। कभी दरकार ही नहीं की। बाबूभाई! सुना नहीं। वहाँ मुम्बई में जहाँ-तहाँ गोला (गप्पा) मारे, उल्टे-सीधे मारे, सुने,

जाओ हो गया धर्म। एक तो कमाने में पूरे दिन पाप। फिर सुनने में ऐसा कहे कि यह करो और यह करो तो उसमें तुम्हें धर्म होगा, वह भी मिथ्यादृष्टि का पाप। ऐ..ई! आहाहा!

यहाँ भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं, भाई! तू शुद्ध जीव स्वभाव तेरा भाव है। तू कोई चीज़ है या नहीं? चीज़ है या अचीज़ है? वस्तु है या अवस्तु है? पदार्थ है या अपदार्थ है? भले अरूपी है, परन्तु अरूपी आनन्दकन्द अनाकुल शान्त और अनन्त गुण का रस अरूपी कन्द आत्मा है। ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने में शुद्ध जीव भाव में इस कर्म का कोई लेप-वेप उसे है नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि करने का नाम आत्मा का स्वीकार, आत्मा का आस्तिक और उसे सम्यग्दर्शनरूपी धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और इस सम्यग्दर्शन में ऐसे स्वीकार धर्म बिना व्रत और दया, काम-क्रोध, दान, तपस्या करके मर जाये। वह चार गति में भटकने का इकाईरहित शून्य है। समझ में आया?

कहते हैं, वह पुद्गल की जो आठ (कर्म) की प्रकृति है न? कहते हैं न? ज्ञानावरणी की प्रकृति, दर्शनावरणी का स्वभाव। कैसा? कि आत्मा के ज्ञान को रोके। कौन? ज्ञानावरणी का स्वभाव है। कहते हैं कि परन्तु वह स्वभाव जो कहते हैं, वह तेरे आत्मा में नहीं है। अब सुन न! आहाहा! अनादि से हाँ-ना का बैर हो गया है। भगवान कहते हैं कि तुझमें जो नहीं है, उसे तू मानता है। ना है, उसकी हाँ करता है, यह तेरे मिथ्यादृष्टि का बैर तूने खड़ा किया है। आहाहा! गजब बातें, भाई!

श्रीमद् ने एक पत्र में लिखा है न कि प्रभु में अनन्त गुणलक्षण। अनन्त गुण प्रभु के, पूरे गुण से प्रभु है, परन्तु इसके अपलक्षण का भी पार नहीं होता। तब फिर वे लोग ऐसा कहे, प्रभु के अपलक्षण कहे हैं। अरे! सुन तो सही, प्रभु! अर्थात् तू, ऐसा कहते हैं। तू बड़ा प्रभु है, भाई! वह सिद्धभगवान होंगे, कहाँ से होंगे? वह पद बाहर से आवे ऐसा है? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अरिहन्तपद और सिद्धपद हुए, वह तो पर्याय निर्मल हुई। वह कहाँ से आयी? शरीर में से आयी? दया, दान के विकल्प / राग में से आयी? समझ में आया? यह अन्तरशक्ति का पूरा तत्त्व अनन्त गुण की राशि पिण्ड, पूरा गुण का पिण्ड अकेला भगवान है। उसके अन्तर में एकाग्र होने से प्रथम सम्यग्दर्शन हो, तब शक्ति का विकास आंशिक होता है, उसे धर्म कहा जाता है। आहाहा! गजब व्याख्या, भाई! पूरी जिन्दगी भ्रम में और भ्रम में बितावे। आँखें बन्द करके जाये चौरासी के अवतार में जोर से।

कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा जहाँ तेरी दृष्टि स्थिर हो और स्थिर होनेयोग्य ऐसा तत्त्व है। ऐसे तत्त्व में इस पुद्गल के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय (प्रकृति का अभाव है।) कहते हैं न कि इस ज्ञानावरणीय प्रकृति ने ज्ञान को रोका, दर्शनावरणीय ने दर्शन को रोका, अन्तराय ने वीर्य को रोका। अरे, सुन न अब! वह तो पर्याय के ऊपर एकत्व तू होता है, इससे तेरी दशा रुकी है, तब कर्म को निमित्तरूप से कहा जाता है परन्तु वह निमित्त और उसके ओर की रुकी हुई पर्याय का अंश वह त्रिकाल वस्तु में नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात।

यहाँ तो निज परमात्मतत्त्व कहा है न? आहाहा! भाई! आठ वर्ष की बालिका हो तो भी उसका आत्मा ऐसा है। डेढ-भंगी का शरीर हो, उसका आत्मा तो ऐसा ही है। आहा..!

मुमुक्षु : छह काय....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय कहाँ? छह काय आत्मा ही नहीं। भगवान इनकार करते हैं। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, वह आत्मा है। छह काय के शरीर तो जड़ हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के शरीर तो अजीव जड़ हैं। वह कहाँ आत्मा था? ऐई! आहाहा! यह आत्मा है? यह तो मिट्टी है। अजीवतत्त्व जड़, पुद्गल की दशा मिट्टी है। दाल, भात, रोटी में से खड़ा हुआ पिण्ड है यह। यह आत्मा है? यह तो जगत की मिट्टी है। अजीव, पुद्गल, मिट्टी, धूल तो जगत की चीज़ है। त्रस, यह त्रस है?

इसने कभी अपने भाव की महत्ता को लक्ष्य में नहीं लिया; इसलिए इसने पर को महत्ता दी और जिसे महत्ता दी, वह इससे पृथक् कैसे पड़े? समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में, आठ वर्ष की बालिका सम्यग्दर्शन कर सकती है, हों! और मेंढ़क, ऐसा मेंढ़क, इतना मेंढ़क भगवान के समवसरण में है, वह ऐसा भान कर सकता है। ऐसा नहीं कि बड़ा मनुष्य हो, ऐसा पढ़ा हो और ऐसा किया हो, ऐसा कुछ नहीं है। अक्षर का ज्ञान न हो और आत्मा का भान कर सकता है। आहाहा!

यहाँ तो परमेश्वर भगवान तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं, वैसा सन्त कहते हैं कि भाई! कि तेरा शुद्धभाव है न अन्दर? पवित्रधाम, ध्रुवधाम, ध्रुवधाम, वह एकरूप चिदानन्द भगवान है। उसकी तू दृष्टि कर। उसके बिना ये सब चीज़ें तुझमें नहीं है। ऐसी मान्यता किये बिना तुझे सम्यग्दर्शन की, धर्म की शुरुआत का पहला सोपान निर्मल नहीं होगा।

आहाहा! और सम्यग्दर्शन के बिना ये व्रत और तप और क्रियाकाण्ड सब रण में शोर मचाने जैसा है। तेरे आत्मा को कुछ लाभदायक नहीं है। नुकसानकारक है। मिथ्या, मेरे हैं, ऐसा माना, (वह) मिथ्यात्व ही है। समझ में आया? पोपटभाई! अरे! यह तो मनुष्य का गर्व उतर जाये ऐसा है।

मुमुक्षु : सच्चा खोटा....

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटे की ही बात कहते हैं न?

उसके स्थान (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं हैं। देखो! है न? ये कर्म के प्रकार की प्रकृतियों के भेद, उनका अस्तित्व उनमें है। शुद्धभाव चैतन्य के अस्तित्व में वे नहीं है। ऐसे शुद्धभाव की अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम भगवान, सम्यग्दर्शन (कहते हैं)। पहले में पहली धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है। आहाहा! एक तो सुनने को मिलता नहीं। अब यह कब सुने? यह कब विचार करे? और कब प्रयोग में लावे? आहाहा! ऐसे का ऐसा अविवेक और अविवेक में, मूढ़ता में और मूढ़ता में। पागलपन में सब जिन्दगी गयी। अनन्त काल से जाये, ऐसी अभी तक जिसे यह भान नहीं, वह सब पागलरूप से जिन्दगी बिताते हैं। पोपटभाई! ये सब चतुर हों वे भी? कहाँ गये? वे गये? नटुभाई गये? गत कल तक नहीं रहे? कल आयेंगे। ठीक। वकील हैं न!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर किसे कहते हैं? इसके लिये तो चतुर याद किया। वकील अर्थात् क्या परन्तु अब? पाँच हजार का वेतन लेता हो तो भी बड़ा मूर्ख है, कहते हैं। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को स्वीकार नहीं करता और पुण्य के फल मेरे और हम कमाते हैं, हमारा जो वकालात का क्षयोपशम है, वह हमारा है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि पाखण्डी अज्ञानी की है। ऐई! कनुभाई! ये जज हैं, लो न ये। अहमदाबाद। समझ में आया? यह भाव जो ज्ञान के उघाड़ का है, जो पर का, वकालात का, व्यापार का यह क्षयोपशमभाव है, वह बन्ध का कारण दु:खदायक है। वह आत्मा का भाव ही नहीं है, ऐसा यहाँ भगवान कहते हैं। आहाहा! यह क्या कहा? ऐई! तुम्हारे यह क्या कहलाता है? टाईल्स। बाबूभाई! तुम्हारे सोने का (काम) है? क्या है? लोहे का? लोहे की कला की वह कला, सोने की कला, यह वकालात की कला, टाईल्स की कला। भगवान कहते हैं, यह उघाड़ जो है ऐसा..

ऐसा.. ऐसा.. करे, वह पर का तो कर नहीं सकता, परन्तु जो उघाड़ (क्षयोपशम) भाव परसम्बन्धी का है, वह दुःखदायक है। वह मेरा है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा!

मुमुक्षु : विकार मेरा नहीं तो किसका है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जड़ का है। उसमें तुझे हो तो शान्ति मिलनी चाहिए न? वह तो जड़ के उघाड़ का जानने को मिला। उसमें चैतन्य का उघाड़ कहाँ आया?

मुमुक्षु : पर्याय तो ज्ञान की है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इसकी पर्याय नहीं। वास्तव में इसकी पर्याय शान्ति और ज्ञान की है। स्व को पकड़े, वह पर्याय इसकी। कठिन बात है, भाई! यह। समझ में आया? ऐसे तो अनन्त बार ग्यारह अंग के शास्त्र के ग्यारह अंग की-शास्त्र के ग्यारह अंग की जानकारी की। तो भी कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वस्तु शुद्ध एक समय में पूर्णानन्द प्रभु आत्मा जिसे हम कहते हैं, भगवान कहते हैं, आत्मा जिसे हम कहते हैं, वह आत्मा शुद्धभाव से भरपूर आनन्दकन्द है, उसकी तुझे रुचि और सन्मुख की दृष्टि नहीं। इसमें यह मान बैठा है, वह मिथ्यात्व का दुःख वेदता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार करे परन्तु किसका स्वीकार करे? यहाँ विष्टा को स्वीकारते होंगे वहाँ? ऐ..ई! आहाहा! ओहो..!

यहाँ तो जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव स्वरूप में नहीं है। ऐसे स्वीकार की दृष्टि किये बिना, उसकी सत्यता का स्वीकार नहीं आता। और सत्य का स्वीकार हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं आता। आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता और सम्यग्ज्ञान बिना चारित्र नहीं होता। आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त तीर्थंकर हुए, उन्होंने कहा। अभी भगवान विराजते हैं, वे ऐसा कहते हैं। महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकरदेव विराजते हैं। सीमन्धर भगवान विराजते हैं। बीस तीर्थंकर और लाखों केवली (विराजते हैं)। अनन्त तीर्थंकर होंगे, वे एक ही आवाज से यह बात करते हैं। समझ में आया? ऐसा भी लोगों को कठिन लगे, ऐसा न! ऊपर चढ़ गया हो, उसे नीचे उतरना (कठिन पड़े ऐसा है)।

इसे मानो कहीं पास हो गया। सातवीं पुस्तक में (कक्षा में) पास हो गया। वह

अच्छा (शिक्षक) परीक्षा लेने आवे (वह कहे), ऐ! नीचे उतर नीचे, एकड़िया में। कहाँ गया यहाँ? तुझे चढ़ाया किसने? चढ़ावा किसने किया? भाई! सेठ के लड़के, इसलिए चढ़ावा किया। नहीं थे? तलकचन्दभाई कहते हैं अपने। पढ़ने में बहुत ध्यान नहीं। नारणसेठ के पुत्र के पुत्र, इसलिए चढ़ावा करके ऊपर चढ़ा दे। लाठी। ऐ! परन्तु छठी पुस्तक का (कक्षा का) कुछ आता नहीं, यह चौथी पुस्तक का कुछ आता नहीं और छठी पुस्तक में कहाँ से बैठा? सेठ का लड़का चढ़ावा करके चढ़ गया।

इसी प्रकार यह श्रद्धा का भान नहीं होता। अज्ञानी आकर चढ़ावा करके (कहे) तुम तो धर्मी हो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। जहाँ सच्चा डिकोटी में परीक्षा लेने गया तो कहे, यह तो मूढ़ है। इसे कुछ भान कहाँ है? नीचे उतर जा। तुझे धर्म में किसने चढ़ाया? वापस निकाल दे। अंक ला, जवाब तो ला। छठी कक्षा में बैठा है तो छठी कक्षा का जवाब ला। हम तो चढ़ाये चढ़ाया। चढ़ाये चढ़ाया तो रह सके। नीचे उतर जा।

इसी प्रकार सर्वज्ञ परमेश्वर की परीक्षा में वीतरागी डिकोटी यहाँ तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ है। समझ में आया? उनकी परीक्षा.. ऐसा आता है, हों! ज्ञानार्णव में बहुत आता है। परीक्षा किये बिना माने वे सब मूढ़ है, कहते हैं। ऐसा आता है और मैं तो पहले कहता था। 'सूयगडांग' का सातवाँ अध्ययन है न? ...यह शब्द पहले आता था। है न? परीक्षा किये बिना माना है, उसमें आत्मा को कुछ सिद्धि नहीं है। परीक्षा नहीं कि आत्मा कौन है? यह विकार उठे, वह क्या है? यह जड़, वह क्या है? सात तत्त्व में सात तत्त्व की भिन्नता के विवेक के भेदज्ञान की खबर नहीं। शरीर, वाणी, मान और पैसा, वह तो मिट्टी, धूल, अजीव है। वह तू है? कर्म, वह जड़ है। वह तू है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन? तीन काल में परवस्तु लाभदायक होगी? यह तो सबेरे बहुत आया था। ऐई! पोपटभाई! धन और स्त्री-पुत्र अच्छे से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा माननेवाले जीव मूढ़ हैं। यह तो परमेश्वर है, सर्वज्ञदेव। जिनके सेवक इन्द्र, बत्तीस लाख विमान के स्वामी शकेन्द्र, ईशानइन्द्र, गणधर, ऐसा जो चक्रवर्ती ज्ञानी समकिती का राज। यह तो केवली का राज है। सर्वज्ञ परमेश्वर का शासनराज। उस शासन में कहते हैं, जिसने भगवान आत्मा को ऐसे कर्म के सम्बन्धवाला पर्याय में स्वीकार किया, अंश में स्वीकार किया, उस अंश को आत्मा माना। उसने त्रिकाल शुद्धभाव को आत्मा नहीं माना।

वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसके ख्याल की खबर तो करे। खबर के बिना रुचि किसकी ओर करेगा? अन्तर्मुख भगवान महाप्रभु स्वयं विराजता है। आहाहा! बात की। प्रकृति की की।

अब प्रदेश की करते हैं। **अशुद्ध अन्तःतत्त्व...** आत्मा की जो मलिन पर्याय है न? मलिन। मलिन के साथ सम्बन्ध है न? स्वभाव के साथ कहाँ सम्बन्ध है? भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परमात्मा स्वयं निज आनन्दकन्द है। उसकी वर्तमान में पुण्य-पाप की भ्रमणा की जो पर्याय है, उस पर्याय के साथ कर्म पुद्गल का सम्बन्ध है। समझ में आया? उस **(अशुद्ध आत्मा के) और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश...** अशुद्ध पर्याय विकारी और कर्म के परमाणु, दोनों एक जगह इकट्ठे होते हैं, ऐसा वह प्रदेशबन्ध। **इस बन्ध के स्थान भी (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं है।** आहाहा! अशुद्धता ही जहाँ नहीं, अशुद्धता की पर्याय के साथ कर्म के प्रदेश का सम्बन्ध था। आत्मा के साथ कुछ नहीं है। सत्य बात का स्वीकार (करना कठिन पड़ता है)। वह निज परमात्मा जो है निरंजन निजस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें इस अशुद्धता के प्रदेश का सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे कहाँ? साथ में होता है। यहाँ अशुद्धता हो, वहाँ रजकण होते हैं। यह है न यह? आत्मा अन्दर असंख्यात प्रदेशी है या नहीं? जहाँ अशुद्धता समय-समय की जो दशा है, उसके साथ वे रजकण साथ में हैं। रजकण परमाणु अन्दर है न? ये कहीं बाहर ऊपर अध्धर नहीं है। साथ में है। उनका प्रवेश कहा है। यह मिट्टी है, वह तो भिन्न तत्त्व है परन्तु वे कर्म के सूक्ष्म, मूर्त, धूल रजकण है न? वह अरूपी भगवान आत्मा के साथ रहे हुए हैं। उस अशुद्धता और इन्हें सम्बन्ध है। ऐसा प्रवेश कहा है। वह वस्तु के स्वभाव में है नहीं। यह भी कहाँ विचारा होगा कि अन्दर क्या होगा? आहा..! समझ में आया?

आत्मा की दशा का एक समय की मलिनता का अंश और कर्म के प्रदेश, रजकण की संख्या-परमाणु की (संख्या) है, भगवान ने जिसे प्रदेशबन्ध कहा है। उन दोनों का सम्बन्ध इस स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? लोगों को ऐसा (होता है), ऐसा तत्त्व क्या होगा यह? यह कहीं वीतरागमार्ग का तत्त्व होगा ऐसा? उसमें तो आवे, एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया.. तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। लो इसमें कुछ समझने का? ऐई! मोहनभाई! यह तो कहते हैं कि वह तो शुभविकल्प की बात है। यह

तो शुभविकल्प भी तेरे स्वरूप में नहीं है, ऐसे तत्त्व की बात है। आहाहा! ओहोहो..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ....शुभराग, अशुभ से टलकर उस समय शुभ का विकल्प न हो। परन्तु वह कहाँ (धर्म है)। वह तो परलक्ष्यी विकार है। वह कहाँ स्वरूप में है? समझ में आया? रट जाये ऐसा का ऐसा। ....अप्पाणं बोसरे। आत्मा को पूरा छोड़ दो। परन्तु आत्मा को तू छोड़ता है, वह कौन सा आत्मा छोड़ता है और कौन सा आत्मा अंगीकार करता है? है कुछ खबर? अप्पाणं बोसरामि। यह कहते हैं यहाँ। भाई! तू अप्पाणं को आत्मा कहे और शुद्धभाव की तो तुझे खबर नहीं और रागादि विकल्प होते हैं, उसे तू आत्मा मानता है, उसे छोड़ता हूँ, परन्तु क्या छोड़ना है? परन्तु इस ओर समझे बिना छोड़ना कहाँ से टले? श्रीमद् ने टीका की है कि अप्पाणं वोसरावे इसमें अज्ञानी पूरा आत्मा छोड़ देता है। जिसे आत्मा की खबर नहीं है। ज्ञानचन्दजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी खबर पड़ी। ५० वर्ष में। कितने वर्ष हुए? ५२। तो ५२ वर्ष मुँडाया, तब खबर पड़ी कहते हैं, परन्तु अभी तक वस्त्र ऐसा आधा रखकर घूमते और ऐसा करके घूमते। सब भाषण देते। यह कहे, यह बराबर है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह लेना, यह करना। हो गया। अरे! भाई! बापू! धर्म अर्थात् एक समय का धर्म अपूर्व मोक्ष की शुरुआत करा दे। एक समय का धर्म अनन्त जन्म-मरण का अन्त ला दे। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरण के भाव ही जिसमें नहीं। ऐसे भाव की दृष्टि अन्तर में होने से भव कहाँ और भव का भाव कहाँ? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने इनकार किया? आहाहा!

इस वस्तु का क्या स्वरूप है, विकार क्या है? और संयोग, वह कर्म क्या और फल क्या? इसका जब तक भाव में ख्याल न आवे, तब तक इससे भिन्न पड़कर स्वभाव की प्रतीति नहीं कर सकता। समझ में आया? ये बन्ध के स्थान नहीं हैं। लो!

शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय सुख-दुःखरूप फल देने की शक्तिवाला वह अनुभागबन्ध है;... कर्म में, हों! **कर्म की निर्जरा के समय...** देखा? **शुभाशुभकर्म की निर्जरा...** रजकण में होती है न? उस **समय सुख-दुःखरूप फल देने की शक्ति...** उस कर्म में, हों! वह तो सुख-दुःखरूप फल देने की शक्ति जड़ में है। **वह अनुभागबन्ध है;...** जड़ में है, वह आत्मा को नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान तो आनन्द के अनुभाग रस से भरपूर है। जिसके अतीन्द्रिय आनन्द के एक समय के स्वाद में इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके, कचरे जैसे लगते हैं, इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए कचड़े के तिनके जैसे लगते हैं। ऐसा भगवान सम्यग्दर्शन में भान होने पर, सुख का स्वाद आने पर, उस चीज़ का भान होने पर दुनिया तीन लोक और तीन काल सड़े हुए तिनके जैसी लगती है। समझ में आया? चैतन्य की कीमत के समक्ष पर की कोई कीमत नहीं रहती और जिसे चैतन्य भगवान की कीमत नहीं, उसने पर की कीमत और महत्ता दी है। उसने भगवान आत्मा का अनादर करके मिथ्यात्वभाव का सेवन किया है। समझ में आया?

इसके स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है... आत्मा.. वस्तु.. वस्तु है। उसमें होवे तो पृथक् पड़े कहाँ से? और भिन्न पड़े, वे उसमें नहीं। समझ में आया? वे महिलायें रोती हैं न, जब बहुत प्रिय मर गया हो। महिलायें, फिर उसे जलावे जलाना हो तो। भाई! अपना हो तो किसलिए जाये? ऐसी बातें करे। खोटे, ढोंग-ढोंग। उन्हें और वे रोते हों, उन्हें भान कहाँ है? वह बुढ़िया होती है न? बाद में रोती है न जरा?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....क्या है? ढ़ोंग के ढ़ोंग अन्दर सबको। क्या है? किसी को लगा हो तो राग-द्वेष लगता है। वह भी ढ़ोंग है न परन्तु? एक जवान लड़का मर गया है। वहाँ बोलने में हाथ उठता नहीं था। स्त्री को और उसकी माँ को... हाय.. हाय। नजरों से देखा हुआ, हों! नजरों से देखा हुआ। नजरों से देखा हुआ सब। यह तुम्हारे सगो के सम्बन्ध की बात। साधु होने के बाद। अच्छा घर और लड़का इकलौता मर गया। लोग बहुत आवे, परन्तु हाथ उठता नहीं था। वह तो अन्दर शोक में मूढ़ता में उलझ गया था। किसका लड़का? किसका बाप तेरा? किसी की चीज़ कहीं आयी थी? और शरीर रजकण, यह आत्मा भिन्न, उसके (शरीर के) रजकण भिन्न। उनकी अवधि से आये और अवधि से चले गये। तुझमें कहाँ घुस गये? लड़का कहाँ तेरा था? आहाहा! नौ महीने पेट में रहे और

बाहर में आवे तब.. आहाहा! हमारा पुत्र। परन्तु तेरा हो वह भिन्न कैसे पड़े? भिन्न हो किसका? सुन न! ऐई! अरे रे! गजब बात, भाई!

सम्यग्दृष्टि जीव जहाँ राग के शुभपरिणाम भी मेरे नहीं मानता, वहाँ स्त्री-पुत्र में पड़ा हुआ परन्तु वे मेरे, (ऐसा) नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? यह निरंजन निज भगवान आत्मा में वह वस्तु है ही नहीं। **और द्रव्यकर्म...** यह सामान्य सब जड़ रजकण। **तथा भावकर्म...** विकार और **उदय के स्थान...** देखा? दोनों लिये। विकार के स्थान शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप के भेद पड़ते हैं न? दया, दान, शुभभाव के; हिंसा, झूठ के अशुभभाव के, इन शुभाशुभभाव के जितने असंख्य प्रकार पड़ते हैं, वे वस्तु में नहीं है। वे विकारी भाव, शुभाशुभभाव हैं, आत्मा में नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व हुआ। द्रव्यकर्म तो अजीवतत्त्व हुआ, नवतत्त्व हैं या नहीं? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। अब नव तत्त्व में ये पुण्य के परिणाम हों, वह कौन सा तत्त्व? वह तो आस्रवतत्त्व है। पुण्यास्रव जिससे आवे। हिंसा, झूठ के परिणाम पापतत्त्व, उनसे पाप रजकण आवें। रजकण, वे अजीव हैं, वह द्रव्यकर्म में और पुण्य-पाप के भाव हों, दया, दान, व्रत के, भक्ति के, दान के, वह सब भावकर्म विकारी परिणाम है। वह आत्मा में नहीं है। उन्हें अपना माने, वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। जो तत्त्व इसका नहीं, उसे इसका मानना; जो तत्त्व इसका है, उसका इसे न मानना, (वह मिथ्यात्व है)। जरा पसीना उतर जाये ऐसा है। आहाहा!

भगवान परमेश्वर तीन लोक के नाथ, वे समवसरण की सभा में महाविदेहक्षेत्र में ऐसा वर्णन कर रहे हैं। परमेश्वर के मुख में से यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे, बाद में आकर यह शास्त्र बनाया। संवत् ४९। समझ में आया? और वहाँ न गये हों और दूसरे ज्ञानियों ने बनाया हो तो भी भगवान के पास गये हुए ही उन्हें समझने और वे कहते हैं। स्वयं आत्मा भगवान है न? आहाहा! कहो, मोहनभाई! इस सुख-दुःख का और सब क्या करना अब इसमें? चौड़ा होकर घूमा, कहते हैं। यह सब तेरा नहीं। चौड़ा होकर घूमा कि पुण्य-परिणाम मेरे, पाप परिणाम मेरे, कर्म मेरा, कर्म बाँधे, उनका फल यह, यह पुत्र मेरा, यह स्त्री मेरी, यह धूल मेरी, यह पैसा मेरा। परन्तु तेरा होगा नहीं तीन काल में। सुन न! भिन्न पड़े वे तेरे होंगे? पुण्य-पाप के परिणाम भी पृथक् पड़ जाते हैं। सिद्ध में रहते हैं?

मुमुक्षु : वर्तमान में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में भी पृथक् हैं। इसके लिये तो यहाँ कहते हैं। सिद्ध में नहीं, इसलिए तुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह द्रव्यकर्म और आठ कर्म सामान्य। भावकर्म के उदय के स्थान। पश्चात् उसमें तो सब ज्ञान की हीनता आदि के प्रकार हैं न? दर्शन की हीनता, वीर्य की हीनता, राग-द्वेष के परिणाम, उन सबका अवकाश निरंजन निज परमात्मतत्त्व को नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसी अच्छी लाभ की बात होने पर भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने सुनी नहीं। इसे यह बाहर का रुचा है। अनादि से साधु हुआ न, साधु? नामधारी। दिगम्बर हुआ, हों! हजारों रानियों को छोड़कर जंगल में गया, परन्तु यह अन्तरतत्त्व पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी इसे रुचि की खबर पड़ी नहीं। यह क्रिया करते हैं, यह करते हैं, यह करते हैं, यह हमारा साधुपना। इससे अपना कल्याण हो जायेगा, ऐसी अनादि काल की दशा सेवन करता आया है; इसलिए यह बात इसे सुनना कठिन लगती है। आहाहा! यह तो गजब कठोर धर्म, कहते हैं। वीतरागमार्ग भारी कठिन, बापू! वीतरागमार्ग ही यह है। दूसरा मार्ग है ही नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(मालिनी)

''न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावदयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥''

देखो! यह स्वभाव आया न यह? इस सम्यक् स्वभाव का, यह शुद्धभाव है। आहाहा! भगवान कहते हैं, हे जगत! हे जगत! जगत अर्थात् जगत में रहनेवाले जीवों। ऐसा, काठियावाड़ी ऐसा कहते हैं न? काठियावाड़ी आये। काठियावाड़ आया, ऐसा कहते हैं न? काठियावाड़ आता होगा? काठियावाड़ के लोग आये। दक्षिण आया, यह पंजाब आया, ऐसा कहते हैं न? इसी प्रकार हे जगत अर्थात् हे जगत के जीवों! ऐसा। समझ में आया?

हे जगत के जीवो! **मोहरहित होकर...** भगवान! एक बार तो पर की सावधानी के विकल्प, इस स्वरूप में नहीं है, ऐसा निर्णय करके एक बार मिथ्यात्वभाव को छोड़कर, एक बार भगवान आत्मा के सावधान स्वभाव की ओर जुड़ान कर और पर की ओर के सावधानी के विकल्प की एकता तोड़कर **सर्व ओर से प्रकाशमान...** भगवान आत्मा चारों ओर से प्रकाशमान। असंख्य प्रदेश में चैतन्य के तेज के नूर का पूर। आहाहा! यह आत्मा।

इन असंख्य प्रदेश में.. यह असंख्य प्रदेश सर्वज्ञ में, वीतराग में ही होते हैं। अन्यमत में ये नहीं होते। वीतराग के अतिरिक्त अन्यमत में एक भी बात सत्य होती ही नहीं। जितने गप्प मारते हों, वे सब आत्मा की बातें बहुत करे न? वह सब गप्प ही गप्प। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्वों के अतिरिक्त किसी तत्त्व में सच्ची गन्ध एक भी नहीं है, परन्तु इस वीतराग का तत्त्व ऐसा है, भाई! एक-एक आत्मा तेरा मोहरहित होकर, भाई! एक बार पर की कीमत की महिमा घटा दे। एक बार पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर, कर्म, फलादि सबके.. महिमा, अधिकता, विशेषता ऐसा जो माना हुआ मोहभाव, उसे छोड़कर **सर्व ओर से प्रकाशमान..** भगवान चैतन्य के नूर हैं। परमात्मस्वरूप अन्दर तेरा है, भाई!

ऐसे उस सम्यक् स्वभाव... यह शुद्धभाव कहा न? शुद्धभाव अधिकार चलता है न? यह सम्यक्स्वभाव। त्रिकाल ध्रुव शुद्धभाव एकरूप परमस्वभावभाव, ऐसा जो जीव शुद्धभाव, शुद्ध जीवास्तिकाय, ऐसा सम्यक्स्वभाव, सत्य स्वभाव। अर्थात्? कि पुण्य-पाप का भाव वह भी सम्यक्स्वभाव नहीं है। शुभ-अशुभभाव, वह सम्यक्स्वभाव नहीं है। कर्म और शरीर और बाह्य चीज़ें, भगवान! वह सम्यक्स्वभाव नहीं। वह तो सब विपरीत भाववाला तत्त्व है।

कहते हैं कि **उस सम्यक् स्वभाव का ही...** ऐसा कहा है न? मिश्र न कर अब, कहते हैं। अकेला भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश का तत्त्व जो अकेला। चारों ओर जिसमें प्रकाश चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य प्रकाश का तेज है, उसका अनुभव करो, उसकी दृष्टि करो और उसका अनुभव करो। वह धर्म है।

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप॥

यह अनुभव, वह धर्म है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सन्त यह अनुभव करके परमात्म पद

को प्राप्त हुए हैं। सिद्ध भी इसी अनुभव का आचरण सेवन कर रहे हैं। आता है न, भाई! अनुभवप्रकाश में आता है। अरिहन्त, सिद्ध, ऐसा शब्द है। अनुष्ठान। सिद्ध भी आचरण सेवन कर रहे हैं। अपने शुद्ध का अनुसरण... समझ में आया? अरे! यह आचरण किस प्रकार का? भाई! यह बाहर की क्रियायें, यह करना, वह करना, (वह आचरण हम तो समझते हैं)।

भाई! यह अंगुली ऐसे चले, बापू! वह तेरा कर्तव्य नहीं, प्रभु! वह तो पक्षघात हो तो इच्छा हो तो भी कहाँ हिला सकता है? ऊं.. ऊं.. ऊं.. करे, तोतडायी करे-भाषा में तोतडायी, गले में तोतडायी, हाथ में तोतडायी। तोतडायी अर्थात्.. सब। क्यों जयचन्दभाई! यह तो स्वयं है न, जड़ का, तुम्हारे नहीं। वह स्वयं अभी हो रहा है। उस जड़ को ऐसा है, ऐसा कहते हैं। परन्तु यह मानता है कि मुझे है, परन्तु वह तो जड़ को है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका आँसू आता है? वह किसका आता है? कि इस शरीर में कुछ होने पर मुझे होता है, ऐसी मान्यता का दुःख होता है उसे। शरीर का बिल्कुल नहीं। भगवान इनकार करते हैं। जड़ के कारण आत्मा को दुःख तीन काल में, तीन लोक में हो नहीं सकता और पर के कारण सुख... जगत का सुख, हों! जगत का माना हुआ, वह पर के कारण नहीं। तेरी कल्पना में खड़ा किया हुआ राग, उसे सुख-दुःख की कल्पना से मान रहा है। समझ में आया? अरे! यह तो कोई एल०एल०बी० की बात अर्थात् मोक्ष की बातें होंगी! यह पहले धर्म की शुरुआत की यह बात है। यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात है। पहले चौथा गुणस्थान जिसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, पश्चात् पाँचवाँ आवे और फिर छठा आवे, चौथे के बिना पाँचवाँ-छठा कहाँ से आ गया अध्धर से एकदम? चौथे का ठिकाना नहीं होता; चारित्रवन्त हो गये और व्रतधारी हो गये। धूल भी नहीं व्रतधारी। सुन न!

कहते हैं अरे! जगत के जीव मोहरहित होकर **अपगतमोहं** है न? भगवान चैतन्य तो प्रकाशवन्त है न, प्रभु! यह विकल्प उठता है, वह तो अचेतन अन्धकार है। यह दया, दान का विकल्प उठता है, वह अन्धेरा, अचेतन विकार है। भगवान चैतन्य प्रकाश का नूर है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उसे **अनुभवन करना चाहिए कि जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** यह कर्म से बँधा हुआ, स्पर्शवाला, भेदवाला, रागवाला, ये भाव **उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** ऊपर तैरते हैं, ऊपर। **वास्तव में स्थिति को प्राप्त**

नहीं होते। इस अन्दर भगवानस्वरूप में है नहीं। ऊपर के ऊपर तैरते हैं। वस्तु चैतन्य गोला, सिद्धभाव, शुद्धभाव का गोला (उससे) ऊपर के ऊपर लटकते है सब। अन्दर में प्रवेश नहीं। (समयसार की) १४वीं गाथा का यह श्लोक है। १४वीं गाथा है न?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जैसा आत्मा हो, आत्मा समझ सकता है। नरक के नारकी का आत्मा भी समझ सकता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा चाहिए, जड़ हो तो न समझे। वह तो मिट्टी है। श्रेणिक राजा। सुना है या नहीं? भगवान के भक्त, क्षायिक समकिती थे। उन्होंने तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। वे अभी पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं।

मुमुक्षु : वहाँ क्या करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे इस आत्मा के आनन्द का अनुभव करते हैं। हम आत्मा शुद्ध हैं, हम नरक में नहीं, हम राग में नहीं, हम दुःख में नहीं। वे नरक में ऐसा अनुभव करते हैं। भविष्य में आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। हम अबद्धस्पृष्ट चैतन्यमूर्ति (हैं)। वे सब ऊपर तैरते हैं। जाननेयोग्य हैं, आदरनेयोग्य नहीं।

ऊपर तैरते होने पर भी... अर्थात् ऊपर है इसलिए, ऐसा। वास्तव में अन्तर शुद्ध ध्रुवस्वभाव जो शुद्धभाव अथवा सम्यक्स्वभाव जो ऊपर कहा है, उसमें इनका प्रवेश नहीं है। पुण्य-पाप का नहीं, भेदों का उसमें प्रवेश नहीं। कर्म का नहीं, ऐसा वह तत्त्व है। उसे भाई! तुम दृष्टि करो, अनुभव करो। उस अनुभव होने के योग्य ही आत्मा है। समझ में आया? वह यह कर सकने योग्य है। वास्तव में विकार करने के योग्य है ही नहीं। वह तो नया खड़ा किया है। आहाहा! ऐसे को अनुभव करो कि जिससे तुम्हें आनन्द हो और जन्म-मरण से मुक्त हुआ जाये।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)